मूल्य : 25 रुपये

वर्ष : 2 अंक : 5 जनवरी–मार्च, 2010

पारस-पखान

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर (जन्म : 7 मई, 1861; मृत्यु : 7 अगस्त, 1941) के 150वें जन्मदिन पर शत-शत नमन!

वर्ष–2, अंक–5, जनवरी–मार्च, 2010

मूल्य : 25 रुपये

पारस-पखान

(हिंदी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं [illegible] अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी)

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
बाबू जीः जैसा मैंने जाना	*डॉ. अनिल कुमार*	*3*
कुल के मुखिया बाबू जी	*डॉ. अनिल कुमार*	*5*
कालजयी		
देश चाहता ऐसा मानव	*पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'*	*6*
कवि	*गोपालसिंह 'नेपाली'*	*7*
झाँसी की रानी	*सुभद्रा कुमारी चौहान*	*9*
दीप	*महादेवी वर्मा*	*13*
महारथी	*भवानी प्रसाद मिश्र*	*14*
चलना हमारा काम है	*शिवमंगल सिंह 'सुमन'*	*15*
वह आग न जलने देना	*रमानाथ अवस्थी*	*17*
समय के सारथी		
सड़क पर एक आदमी	*अशोक वाजपेयी*	*19*
ओ बासंती पवन	*कुंवर बेचैन*	*21*
मैं समर्पित बीज-सा	*डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र*	*22*
देखता हूँ इस शहर को	*भारतेंदु मिश्र*	*23*
आखिर कब तक?	*विजयशंकर चतुर्वेदी*	*24*
जहीर कुरैशी की दो ग़ज़लें		*25*
उपहार	*तपन राय*	*27*
नरेश शांडिल्य के दोहे		*28*
तो बड़ा नुकसान होगा	*शिव कुमार 'बिलग्रामी'*	*29*
नारी स्वर		
पूजा-अर्चना	*डा. शैलजा सक्सेना*	*30*
दस चुनिंदा शेर		*31*
प्रवासी के बोल		
चोंच में आकाश	*पूर्णिमा वर्मन*	*32*
अपने दिल के हर...	*अभिनव शुक्ला*	*33*
पल पल जीवन बीता...	*लावण्या शाह*	*34*
चार मुक्तक	*अनूप भार्गव*	*35*
गीत ढूँढ़े	*सुरेन्द्र नाथ तिवारी*	*36*
नवांकुर		
नई कविताएं	*अंतरा करवड़े*	*37*
पुस्तक-समीक्षा		
पार्श्व में गंभीर चिंतन है	*शिव कुमार बिलग्रामी*	*39*

संपादक

डॉ. सुनील जोगी

आपके सुझावों और रचनाओं का स्वागत है–
kavi**sunil**jogi@gmail.com

संरक्षक

डॉ. एल.पी. पाण्डेय;
श्री अभिमन्यु कुमार पाठक;
श्री अरुण कुमार पाठक;
श्री राजेश प्रकाश;
डॉ. अनिल कुमार।

लेआउट एवं टाइपसेटिंग :
इंडिका इन्फोमीडिया, जनकपुरी, नई दिल्ली - 110058

मूल्य : 25 रुपए
वार्षिक : 100 रुपए
पंचवार्षिक : 450 रुपए
आजीवन : 5,000 रुपए
विदेशों में : $ 5
(एक अंक)

प्रवासी संपादकीय सलाहकार

डॉ. सुरेशचन्द्र शुक्ल (नार्वे)
श्री ब्रह्म शर्मा (सिंगापुर)
श्री सी. एम. सरदार

संपादकीय कार्यालय

आर-101 ए, गीता अपार्टमेन्ट
खिड़की एक्सटेन्शन,
मालवीय नगर
नयी दिल्ली - 110017
दूरभाष - 98110-05255

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक **प्रसून प्रतिष्ठान** के लिए **डॉ. अनिल कुमार** द्वारा अभिषेक प्रिंटर्स, सी, 136, फेज 1, नारायणा, इंडस्ट्रियल एरिया, नयी दिल्ली में मुद्रित एवं सी-49, बटलर पैलेस कॉलोनी, जॉपलिंग रोड, लखनऊ से प्रकाशित। संपादक - **डॉ. सुनील जोगी**।

'पारस-पखान' में प्रकाशित रचनाओं के रचयिताओं के विचार अपने हैं। विवादास्पद मामले लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

संपादकीय

एक बार गांधी जी ने रवींद्रनाथ टैगोर और बांग्ला साहित्य की चर्चा करते हुए हिंदी साहित्य में किसी 'रवींद्रनाथ' के नहीं होने और प्रकारांतर से हिंदी साहित्य के 'गरीब' होने की बात कही थी। इस पर सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ताव खा गए और उन्होंने गांधी की इस बात पर अपनी कड़ी प्रतिक्रिया दी। इस प्रसंग का यहां उल्लेख करने का हमारा मकसद यह है कि लगभग सात-आठ दशक पहले भी हिंदी साहित्य के समृद्ध होने को लेकर शंका थी और आज भी है। यह शंका उस जमाने में किसी ऐरे-गैरे ने नहीं की थी बल्कि एक ऐसे व्यक्ति ने की थी जो अपने समकालीन बुद्धिजीवी पीढ़ी के न केवल शिखर थे बल्कि देश की राजनीति और समाज को दशा-दिशा देने वाले शिखर और प्रखर व्यक्तित्व भी थे, वे 'संत' भी कहाते थे इसलिए उनकी बात को काटने की हिम्मत किसी की नहीं हुई। हां, निराला जैसे अक्खड़ और फक्कड़ कवि की बात ही अलग थी, जिनमें इतना नैतिक बल और साहस था कि उन्होंने गांधी जैसे विराट व्यक्तित्व को भी नहीं बख्शा। इस प्रसंग से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी साहित्य की मुफलिसी पर चर्चा आज भी एक मौजूं विषय है। गांधी जी जब हिंदी साहित्य की विपन्नता की चर्चा कर रहे थे तब हिंदी के साहित्याकाश में द्विवेदी और प्रेमचंद जैसे नक्षत्र चमक रहे थे और उसके बाद भी प्रसाद, पंत, दिनकर, गुप्त (मैथिलीशरण), महादेवी, बच्चन और स्वयं निराला से आगे नागार्जुन, अश्क, भीष्म साहनी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर और उससे भी आगे आज के दौर में कुंवर नारायण, केदारनाथ सिंह, अशोक वाजपेयी, राजेंद्र यादव, कृष्णा सोबती आदि जैसे धुरंधरों ने हिंदी साहित्य के घट को समृद्ध करके विश्व की किसी भी समकालीन भाषा के बराबर ला खड़ा किया है।

विश्व की सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा मंदारिन (चीनी) के बाद और अंग्रेजी के समकक्ष होने के बावजूद हिंदी संयुक्त राष्ट्र की अधिकृत भाषा नहीं बन पाई है। लेकिन बावजूद इसके, कम जनसंख्या द्वारा बोली जाने वाली भाषाएं–फ्रेंच, अरबी, रूसी और स्पेनिश संयुक्त राष्ट्र की छह कामकाजी भाषाओं में शामिल हैं। भूमंडलीकरण और वैश्वीकरण के इस युग में भारत के लोग पूरी दुनिया में उच्च कार्यक्षमता के बल पर फैल चुके हैं और अपना महत्त्व सिद्ध कर रहे हैं। विश्व के कई अन्य देशों में हिंदी बोली और समझी जाने वाली भाषा बन गई है। दुनिया भर के देशों मे हिंदी फिल्मों की लोकप्रियता भी इस तथ्य की तस्दीक करती है। संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में पिछले विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन हिंदी को विश्व स्तर पर मान्यता दिए जाने की दिशा में एक प्रतीकात्मक कदम अवश्य माना जाएगा, किंतु हिंदी भी संयुक्त राष्ट्र की एक अधिकृत भाषा बने, इस हक की लड़ाई प्रतीकों और बिंबों से नहीं लड़ी जा सकती। इसके लिए आज के हिंदी के नामवर, नामचीन और स्वनामधन्यों को चाहिए कि वे आगे आएं और सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट कराएं। कई ठोस कदम उठाए जाने की जरूरत है।

और अंत में, पत्रिका में हम नई रचनाओं के साथ ही पुरानी और पूर्व प्रकाशित उन रचनाओं को जगह देते हैं जो आज के पाठकों के लिए भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने तब थे। ये रचनाएं कालजयी हैं। 'झांसी की रानी' एक वैसी ही अविस्मरणीय रचना है। कालजयी से लेकर समकालीन रचनाकारों की रचनाओं से परिपूर्ण यह अंक आपको कैसा लगा यह जिज्ञासा स्वाभाविक है। आपके स्नेह पत्रों की प्रतीक्षा रहेगी। अभी तो बस इतना ही।

–डॉ. सुनील जोगी
(संपादक)
मोबा. : 09811005255
ई-मेल : kavi**suni**ljogi@gmail.com

बाबू जी : जैसा मैंने जाना

– डॉ. अनिल कुमार

वैसे तो किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में कुछ लिखना कठिन होता है किन्तु यदि वह व्यक्ति अपना हो तो यह कार्य और भी दुरूह हो जाता है। आगे जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व के विषय में कुछ कहने का प्रयास कर रहा हूँ, वे मेरे पिता हैं। निश्चित रूप से उनके संबंध में मेरा कथन पाठकों के मन में यह पूर्वाग्रह लाएगा कि पिता के विषय में एक पुत्र का कथन भी कहीं न कहीं पूर्वाग्रहग्रस्त ही होगा तथा उसके व्यक्तित्व के सकारात्मक पहलुओं का वर्णन करने में अतिशयोक्ति का आश्रय लिया गया होगा। किन्तु उपरोक्त सम्भावित अवधारणाओं पर ध्यान न देते हुए मुझे अपने धर्म का निर्वाह करना है क्योंकि जहाँ मैं उन्हें एक पुत्र होने के कारण औरों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह से जान व समझ सका हूँ वहीं एक शिष्य व मित्र के रूप में भी उनके सान्निध्य व स्नेह-छाया को उनके जीवनपर्यन्त प्राप्त कर सका हूँ। इसी कारण मैं अपने अन्दर ऐसी शक्ति का प्रवाह महसूस कर रहा हूँ जो मुझे इस बात के लिए प्रेरित कर रहा है कि अपने पिता, गुरू व मित्र के विषय में बिना किसी पूर्वाग्रह के उनके जीवन के विभिन्न महत्वपूर्ण पहलुओं के बारे में पाठकों को कुछ अवगत करा सकूँ।

भारतवर्ष के उत्तर प्रदेश प्रान्त के जनपद जौनपुर के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में स्थित ग्राम गोपालपुर (उ.रे. के स्टेशन जरौना से एक किमी. पूरब) में 17 जुलाई, 1932 यानी आषाढ़ पूर्णिमा (गुरू पूर्णिमा) के दिन एक ऐसे बालक का जन्म हुआ जो पैदा तो हुआ मुख में सोने का चम्मच लेकर लेकिन 7 वर्ष की उम्र में ही वंचित हो गया माँ-बाप दोनों के स्नेह से। वह इंसान कोई और नहीं बल्कि मेरे पिता, गुरू व मित्र श्री पारसनाथ पाठक 'प्रसून' थे। हालाँकि असमय माँ-बाप की स्नेह-छाया से वंचित हो जाना किसी भी बालक के लिए सबसे दुःखद होता है क्योंकि न तो माँ-बाप के स्नेह की भरपाई किसी भी प्रकार की जा सकती है और न ही सही राह दिखलाने वाला रह जाता परन्तु पिता जी के जीवन-संघर्ष को देखकर ऐसा लगता है कि वे अपने माता-पिता की अदृश्य स्नेह-छाया व आशीर्वाद से इस शिखर पर पहुँचे जिस पर पहुँचने की कल्पना भी सामान्य परिस्थितियों में नहीं की जा सकती। पिता जी ने उक्त विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय विद्यालयों से पूरी करते हुए वर्ष 1953 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी.ए. कक्षा में प्रवेश लिया और वहाँ से स्नातक करने के पश्चात् गोरखपुर विश्वविद्यालय में बी.एड. तथा काशी विद्यापीठ, वाराणसी से इतिहास व हिन्दी साहित्य में एम.ए. की डिग्री हासिल की। इसके साथ ही उन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, इलाहाबाद से 'विशारद' तथा 'साहित्यरत्न' की उपाधि भी प्राप्त की। सामाजिक आवश्यकताओं को देखते हुए उन्होंने अध्यापन कार्य को प्राथमिकता दी और स्थानीय सर्वोदय विद्यापीठ इण्टर कॉलेज मीरगंज, जौनपुर की स्थापना में अग्रणी भूमिका निभाई और वहीं पर हिन्दी के प्रवक्ता के रूप में कार्य किया। एक बार मैंने उनसे पूछा कि आपने जिस समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी.ए. किया तो आपने किसी अच्छी सेवा/नौकरी के लिए क्यों नहीं प्रयास किया तो उनका जवाब था कि अध्यापन के अतिरिक्त किसी अन्य सेवा से मैं अपने परिवार या कुछ विशेष लोगों की मदद कर सकता था किन्तु अध्यापन के माध्यम से मैं शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े अपने इस क्षेत्र व समाज की अधिक सेवा व मदद कर सका हूँ। उन्होंने यह भी बताया था कि उनके द्वारा हाईस्कूल की परीक्षा लगभग तीस-पैंतीस किमी. दूर स्थित विद्यालय से उत्तीर्ण की गई थी क्योंकि उस समय आस-पास कोई विद्यालय नहीं था।

पिता जी का जीवन-संघर्ष एक ऐसे व्यक्तित्व के जीवन संघर्ष का स्मरण कराता है जो कभी हार नहीं मानता और शांत भाव से जीवन-पथ पर 'एकला' चलता रहता है। मेरा मानना है कि ऐसा व्यक्ति सोने की तरह तप कर और भी चमकने लगता है तथा अपनी आभा से दूसरे को भी चमका देता है। वैसे भी अपने नाम 'पारस' के अनुरूप उन्होंने जिस किसी को भी अपनाया, उसे अनोखा बना डाला। उनके इस प्रभाव के साक्षी हम सभी परिवार जन तो हैं ही, इसके गवाह ऐसे बहुसंख्यक लोग भी हैं जिनको पिताजी ने किसी न किसी रूप में अपनाया तथा सम्बल प्रदान किया।

पिताजी के बचपन की परिस्थितियाँ तथा उससे उपजी उनके संघर्ष करने की क्षमता ने निश्चित रूप से उन्हें अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति हेतु साहित्य-सृजन के लिए प्रेरित किया और इसी का परिणाम है उनकी रचनायें जिनमें से कुछ प्रस्तुत काव्य संग्रह 'स्वर बेला' के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हो रही हैं। पिता बाल्यकाल से ही साहित्य-सृजन करने लगे थे और साठ व सत्तर के दशक में ऐसा प्रतीत होता है कि उनका साहित्य सृजन अपने चरमोत्कर्ष पर रहा। इसी काल में उनकी रचनायें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई जिनमें श्री रामेश्वर प्रसाद सिंह के सम्पादन में जौनपुर से प्रकाशित होने वाला 'समय' साप्ताहिक पत्र मुख्य है।

पिताजी कभी-कभार इस बात की चर्चा करते रहते थे कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्ययन के दौरान उन्हें विभिन्न साहित्यिक विभूतियों के सम्पर्क व सान्निध्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिसमें से डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. हरिवंश राय बच्चन, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. धर्मवीर भारती, डॉ. रघुपति सहाय 'फिराक गोरखपुरी', पं. लक्ष्मी नारायण मिश्रा, पं. सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा आदि प्रमुख थीं। डॉ. हरिवंश राय बच्चन एवं डॉ. धर्मवीर भारती के प्रति पिताजी की अगाध श्रद्धा थी। वे कहीं न कहीं इन महान साहित्यिक विभूतियों से प्रभावित रहे और शायद पारिवारिक व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वे अपने गाँव नहीं लौटे होते तो उनके साहित्य की दशा व दिशा सार्वदेशिक हो चुकी होती और वे एक कवि व साहित्यकार के रूप में अज्ञात और अल्पख्यात नहीं होते। साहित्य-सृजन के प्रारम्भिक काल में भले ही वे आत्मविज्ञापन व प्रकाशन के पक्षधर रहे हों किन्तु बाद में उन्होंने कभी भी अपनी साहित्यिक उपलब्धियों के प्रचार-प्रसार व प्रकाशन करने हेतु प्रयास नहीं किया। लगभग डेढ़-दो वर्ष पूर्व मैंने उनसे यह निवेदन किया कि वे अपनी रचनाओं को एकत्र कर प्रकाशन हेतु मुझे उपलब्ध कराने की कृपा करें तो उनके द्वारा बड़े अनमने ढंग से यह जवाब दिया गया कि 'अरे! रचनायें खो-खवा गई होगीं, अब छपने के लिए कहाँ बचीं हैं।' किन्तु कदाचित उन्हें अपने पुत्र की भावनाओं का ध्यान रहा होगा; इसलिए उन्होंने अपनी कुछ रचनाओं को पाण्डुलिपि तथा उसके संबंध में अपना कथन एक डायरी में अंकित कर दिया था जो उनकी मृत्यूपरान्त मुझे प्राप्त हुई और उस समय मुझे उन क्षणों की बरबस याद आ गई जब मैंने उनसे इन्हें संग्रहीत करने का निवेदन किया था। उन्होंने अपनी कविताओं के संग्रह को 'स्वर बेला' नाम दिया है और इसी नाम से उनका यह संग्रह लगभग उसी रूप में मुद्रित व प्रकाशित होकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हो रहा है।

पिताजी ने उक्त काव्य संग्रह की भूमिका 'अपनी बात' में प्रारम्भ में ही लिखा है, 'बाल्यकाल में रचित अनेक कविताओं में से लुप्त होने से बची प्रस्तुत रचना...।' वे आगे लिखते हैं, 'वे इस संग्रह की रचनाओं में एक-दो को छोड़कर सभी मेरे बाल्यकाल की कृतियाँ हैं। मेरे जीवन में काव्य रचना आरम्भ से अन्त तक संघर्षों, जटिलताओं का काव्य रहा है। मैंने समाज में दुराचरण, अनाचरण, ईर्ष्या तथा द्वेष की प्रवृत्ति बहुतायत से देखी है, झेला भी है और यदाकदा विरोध भी किया है, परिणामस्वरूप जीवन बहुत ही दुरूह और शुष्क-सा हो गया। अतः बाद में न जाने क्यों काव्यधारा शुष्क-सी होती गई।' लेकिन पिताजी जीवन में कभी निराशावादी नहीं रहे और उन्होंने जीवन को जीवन्त तरीके से जिया। उन्होंने स्वयं लिखा 'वास्तव में जीवन में मैं निराशावादी कभी नहीं रहा...।'

पिताजी की कविताओं में जहाँ विषय की विविधता है वहीं शैली का भी वैविध्य है। उन्हें यह आभास है कि बाल मन भावुक होता है और जैसे-जैसे यह युवा होता है वैसे-वैसे कल्पना की ऊँची उड़ानों से नई सृष्टि का सृजन भी करता है किन्तु इस भावुकता व कल्पनाशीलता के साथ ही साथ उन्हें सृष्टि के यथार्थ व व्यावहारिक पहलुओं व पक्षों का भी भान है क्योंकि जहाँ कल्पना व भावना में मिलन से विरह तक अपनी लेखनी चलाते हैं वहीं वे सामाजिक असमानता, दुराचरण व शोषण से चिन्तित हैं और उसके विरूद्ध अपनी रचना में मुखर भी होते हैं। कभी-कभी वे अपनी रचनाओं में भौतिक जगत् से परे आध्यात्मिक सत्ता से एकाकार होना चाहते हैं। समग्रतः उनकी रचनायें जीवन के हर पहलुओं को छूती है और वे ऐसी समतामूलक सृष्टि से दुराचार, ईर्ष्या, द्वेष, विवाद का अन्त चाहते हैं जिसके लिए महामानव बुद्ध ने राजप्रासाद का भी त्याग कर दिया था। यद्यपि मुझमें पिताजी या किसी अन्य कवि व साहित्यकार की रचनाओं की समीक्षा करने की सामर्थ्य नहीं है फिर भी मेरे द्वारा भावना में पिताजी की रचनाओं के संबंध में उपर्युक्त टिप्पणी कर दी गई है किन्तु यह कहाँ तक सही या गलत है, मुझ नहीं मालूम।

(स्व. पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून' के काव्य-संग्रह 'स्वर बेला' से उद्धृत)

कुल के मुखिया बाबू जी

– डॉ. अनिल कुमार

छोड़ गये क्यूँ हमें अकेले
कुल के मुखिया बाबू जी।
समझ न आये, दिल घबराये
हम हैं दुखिया बाबू जी।।

भरी दुपहरी हुआ अंधेरा
चारों ओर दुखों का घेरा।
बीच धार में छोड़ गया
हमें अकेला नाविक मेरा।
संगी-साथी काम न आये
डूबी नइया बाबू जी।
समझ न आये, दिल घबराये
हम हैं दुखिया बाबू जी।।

पुष्प-पथों पर काँटे बिखरे
मिले हमें क्यूँ जख्म ये गहरे।
रोयें-बिलखें सभी आत्मजन
तेरा जाना सबको अखरे।
आत्मसात दुःख किया सभी ने
कोई न सुखिया बाबू जी।
समझ न आये, दिल घबराये
हम हैं दुखिया बाबू जी।।

जब इतनी जल्दी जाना था
हम सबको यूँ ठुकराना था।
इतना स्नेह-दुलार दिया क्यूँ
जीवन भर जब तड़पाना था।
अब तो सब सुख-चैन खो गया
नयनों की निंदिया बाबू जी।
समझ न आये, दिल घबराये
हम हैं दुखिया बाबू जी।।

देश चाहता ऐसा मानव

– पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

देश चाहता ऐसा मानव, जो मानव को प्यार करे।
मानवता की रक्षा के हित, जो अशेष बलिदान करे।
सूख रही है फसल देश की, कृषक सिकता खलिहानों में,
श्रम से विकल वर्ग श्रमिकों का, उलझा दुःख के तूफानों में,
आज चाहिये ऐसा मानव, जो इनका भी ध्यान करे।
नहर खोद कर निज पौरुष से, श्रमिकों का श्रम ताप हरे।।

देश चाहता ऐसा मानव, जो युग का निर्माण करे।
धरती पर ला दे जो सुषमा, गांवों का उत्थान करे।।
कुत्तों से भी निम्न हो रही आज मनुज की गणना।
रोटी के टुकड़ों के कारण पड़ता उसको लड़ना।
आज चाहिये ऐसा मानव, दुःख में जो मुस्कान भरे।
मिट्टी के कण-कण से जग को, जो मधुरस का दान करे।

देश चाहता ऐसा मानव, जीवन में जो प्राण भरे।
जगती में भर दे समरसता, कष्टों का तूफान हरे।
भूख-भूख की रटन किया करते, अब भी कितने मानव।
प्राण खींचती आज भूख की ज्वाला, बन जैसे दानव।
आज चाहिए ऐसा मानव, जो प्राणों का दान करे।
स्वप्नों-आदर्शों के बल पर, मानवता का त्राण करे।।

बस इस पर नाराज़ है, जंगल की सरकार।
कैसे पंछी ले उड़े, उड़ने का अधिकार।।
—पाल भसीन

कवि

– गोपालसिंह 'नेपाली'

मैं दीपक-सा जल रहा आज अन्तर में हाहाकार लिए।
जग ऊँघ रहा है तिमिर बना सुख-स्वप्नों का संसार लिए।।
जग रास रचाए जाता है
जग हास बिछाए जाता है
क्षण-भर आनन्द-विलासों की
जग धूम मचाए जाता है
मैं जग के सुख से अलग खड़ा, वाणी में जयजयकार लिए।।
जग को दुख है जग रोता है
कुछ पाता है सब खोता है
युग-ईश्वर की बलि-वेदी पर
जग बार-बार बलि होता है
मैं जग के दुख में शामिल हूँ इन आँखों में जलधार लिए।।
जग का निकुंज है शूल-भरा
जीवन का दामन धूल-भरा
हँसकर वसन्त दे गया चमन
सूखे-मुरझाए फूल-भरा
कवि बुलबुल बनकर चीख उठा दृग में उजड़ा श्रृंगार लिए।।
जग बेखबरों की बस्ती है
चलते झोंकों की हस्ती है
आँसू बन-बन जो ढुलक पड़े
जग वह आँखों की मस्ती है
डाली-डाली में फूल हँसे, टहनी-टहनी पतझार लिए।।
जीवन लेकर रवि आता है
जीवन देकर रवि जाता है
मादक देकर रवि जाता है
मादक पूनो का पूर्णचन्द्र
छवि रूप लुटा मुस्काता है
कवि आता है जग की वीणा में प्राणों की झंकार लिए।।
नित कल्प तिमिर का है अपार
बढ़ता जाता है अन्धकार

कवि आता संध्या-दीप लिए
झिलमिल कर जाता द्वार-द्वार
आँधी में भी वे दीप खड़े अपनी लौ में ललकार लिए।।
जो कम्पन वीणा-तारों में
वह सिहरन बना सितारों में
रोमांच उषा का, संध्या की
पग-पायल की झंकारों में
मैं घन बनकर छाया नभ में झोंकों में पारावार लिए।।
जग श्याम मेघ की माला है
जीवन बिजली-उजियाला है
कवि दृश्यों के उस पार खड़ा
तूफान उठाने वाला है
मैं रह न सका चुप जीवन में चंचल सागर का ज्वार लिए।।
जग कमल बना सरसी-जल का
जीवन है रूप मधुप-दल का
शुभ श्वेत कमल के पातों पर
सरसी का निर्मल जल छलका
कवि रवि बनकर उठ आता है कर में किरणों का हार लिए।।

जब प्यासे के आ गयी, अधरों पर मुस्कान
पानी-पानी हो गया, सारा रेगिस्तान।
—अंसार कंबरी

झाँसी की रानी

– सुभद्रा कुमारी चौहान

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में आई फिर से नयी जवानी थी,
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।
चमक उठी सन सत्तावन में, वह तलवार पुरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

कानपुर के नाना की, मुँहबोली बहन छबीली थी,
लक्ष्मीबाई नाम, पिता की वह संतान अकेली थी,
नाना के संग पढ़ती थी वह, नाना के संग खेली थी,
बरछी ढाल, कृपाण, कटारी उसकी यही सहेली थी।
वीर शिवाजी की गाथायें उसकी याद जबानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारों के वार,
नकली युद्ध-व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना, दुर्ग तोड़ना ये थे उसकी प्रिय खिलवार।
महाराष्टर-कुल-देवी उसकी भी आराध्य भवानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाई झाँसी में,
ब्याह हुआ रानी बन आई लक्ष्मीबाई झाँसी में,
राजमहल में बजी बधाई खुशियाँ छाई झाँसी में,
चित्रा ने अर्जुन को पाया, शिव से मिली भवानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

कालजयी

उदित हुआ सौभाग्य, मुदित महलों में उजियाली छाई,
किंतु कालगति चुपके-चुपके काली घटा घेर लाई,
तीर चलाने वाले कर में उसे चूड़ियाँ कब भाई,
रानी विधवा हुई, हाय! विधि को भी नहीं दया आई।
निस्संतान मरे राजाजी रानी शोक-समानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

बुझा दीप झाँसी का तब डलहौज़ी मन में हरषाया,
राज्य हड़प करने का उसने यह अच्छा अवसर पाया,
फौरन फौजें भेज दुर्ग पर अपना झंडा फहराया,
लावारिस का वारिस बनकर ब्रिटिश राज्य झाँसी आया।
अश्रुपूर्णा रानी ने देखा झाँसी हुई बिरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

अनुनय विनय नहीं सुनती है, विकट शासकों की माया,
व्यापारी बन दया चाहता था जब यह भारत आया,
डलहौजी ने पैर पसारे, अब तो पलट गई काया,
राजाओं नव्वाबों को भी उसने पैरों ठुकराया।
रानी दासी बनी, बनी यह दासी अब महरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

छिनी राजधानी दिल्ली की, लखनऊ छीना बातों-बात,
कैद पेशवा था बिठुर में, हुआ नागपुर का भी घात,
उदैपुर, तंजौर, सतारा, करनाटक की कौन बिसात?
जबकि सिंध, पंजाब ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्र-निपात।
बंगाले, मद्रास आदि की भी तो यही कहानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

रानी रोयीं रनिवासों में, बेगम गम से थीं बेज़ार,
उनके गहने कपड़े बिकते थे कलकत्ते के बाज़ार,
सरे आम नीलाम छापते थे अंग्रेज़ों के अखबार,
'नागपुर के ज़ेवर ले लो लखनऊ के लो नौलख हार'।
यों परदे की इज्ज़त परदेशी के हाथ बिकानी थी,

कालजयी

बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

कुटियों में भी विषम वेदना, महलों में आहत अपमान,
वीर सैनिक के मन में था अपने पुरखों का अभिमान,
नाना धुंधूपंत पेशवा जुटा रहा था सब सामान,
बहिन छबीली ने रण-चण्डी का कर दिया प्रकट आहवान।
हुआ यज्ञ प्रारम्भ उन्हें तो सोई ज्योति जगानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

महलों ने दी आग, झोंपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी,
यह स्वतंत्रता की चिनगारी अंतरतम से आई थी,
झाँसी चेती, दिल्ली चेती, लखनऊ लपटें छाई थी,
मेरठ, कानपूर, पटना ने भारी धूम मचाई थी,
जबलपूर, कोल्हापूर में भी कुछ हलचल उकसानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

इस स्वतंत्रता महायज्ञ में कई वीरवर आए काम,
नाना धुंधूपंत, ताँतिया, चतुर अज़ीमुल्ला सरनाम,
अहमदशााह मौलवी, ठाकुर कुँवरसिंह सैनिक अभिराम,
भारत के इतिहास गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम।
लेकिन आज जुर्म कहलाती उनकी जो कुरबानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

इनकी गाथा छोड़, चले हम झाँसी के मैदानों में,
जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मर्दानों में,
लेफ्टिनेंट वाकर आ पहुँचा, आगे बड़ा जवानों में,
रानी ने तलवार खींच ली, हुआ द्वन्द्व असमानों में।
जख्मी होकर वाकर भागा, उसे अजब हैरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

रानी बढ़ी कालपी आई, कर सौ मील निरंतर पार,
घोड़ा थक कर गिरा भूमि पर गया स्वर्ग तत्काल सिधार,

कालजयी

यमुना तट पर अंग्रेजों ने फिर खाई रानी से हार,
विजयी रानी आगे चल दी, ग्वालियर पर अधिकार।
अंग्रेजों के मित्र सिंधिया ने छोड़ी राजधानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

विजय मिली, पर अंग्रेजों की फिर सेना घिर आई थी,
अबके जनरल स्मिथ सम्मुख था, उसने मुँह की खाई थी,
काना और मंदरा सखियाँ रानी के संग आई थी,
युद्ध क्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थी।
पर पीछे ह्यूरोज़ आ गया, हाय! घिरी अब रानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

तो भी रानी मार काट कर चलती बनी सैन्य के पार,
किन्तु सामने नाला आया, था वह संकट विषम अपार,
घोड़ा अड़ा, नया घोड़ा था, इतने में आ गये अवार,
रानी एक, शत्रु बहुतेरे होने लगे वार पर वार।
घायल होकर गिरी सिंहनी उसे वीरगति पानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

रानी गई सिधार, चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी,
मिला तेज से तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी,
अभी उम्र कुल तेइस की थी, मनुज नहीं अवतारी थी,
हमको जीवित करने आयी बन स्वतंत्रता-नारी थी,
दिखा गई पथ, सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

जाओ रानी याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी,
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतंत्रता अविनासी,
होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फाँसी,
हो मदमाती विजय, मिटा दे गोलों से चाहे झाँसी।
तेरा स्मारक तू ही होगी, तू खुद अमिट निशानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

दीप

– महादेवी वर्मा

मूक कर के मानस का ताप
सुलाकर वह सारा उन्माद,
जलाना प्राणों को चुपचाप
छिपाये रोता अन्तर्नाद;
कहाँ सीखी यह अद्भुत प्रीति?
मुग्ध हे मेरे छोटे दीप!

चुराया अन्तस्तल में भेद
नहीं तुमको वाणी की चाह,
भस्म होते जाते हैं प्राण
नहीं मुख पर आती है आह;
मौन में सोता है संगीत–
लजीले मेरे छोटे दीप!

क्षार होता जाता है गात
वेदनाओं का होता अन्त,
किन्तु करते रहते हो मौन
प्रतीक्षा का आलोकित पन्थ;
सिखा दो ना नेही की रीति–
अनोखे मेरे नेही दीप!

पड़ी है पीड़ा संज्ञाहीन
साधना में डूबा उद्गार,
ज्वाल में बैठा हो निस्तब्ध
स्वर्ण बनता जाता है प्यार;
चिता है तेरी प्यारी मीत–
वियोगी मेरे बुझते दीप?

अनोखे से नेही के त्याग
निराले पीड़ा के संसार
कहाँ होते हो अंतर्ध्यान
लुटा अपना सोने सा प्यार
कभी आएगा ध्यान अतीत।

महारथी

– भवानी प्रसाद मिश्र

झूठ आज से नहीं
अनन्त काल से
रथ पर सवार है
और सच चल रहा है
पाँव-पाँव

नदी पहाड़ काँटे और फूल
और धूल
और ऊबड़-खाबड़ रास्ते
सब सच ने जाने हैं

झूठ तो
समान एक आसमान में उड़ता है
और उतर जाता है
जहाँ चाहता है

क्रमशः बदली है
झूठ ने सवारियाँ

आज तो वह सुपरसोनिक पर है

और सच आज भी
पाँव-पाँव चल रहा है

इतना ही हो सकता है किसी दिन
कि देखें हम
सच सुस्ता रहा है
थोड़ी देर छाँव में
और

सुपरसोनिक किसी झँझट में पड़कर
जल रहा है

चलना हमारा काम है

– शिवमंगल सिंह 'सुमन'

गति प्रबल पैरों में भरी
फिर क्यों रहूँ दर दर खड़ा
जब आज मेरे सामने
है रास्ता इतना पड़ा
जब तक न मंज़िल पा सकूँ,
तब तक मुझे न विराम, चलना हमारा काम है।

सब कुछ कह लिया, कुछ सुन लिया
कुछ बोझ अपना बँट गया
अच्छा हुआ, तुम मिल गईं
कुछ रास्ता ही कट गया
क्या राह में परिचय कहूँ, राही हमारा नाम है,
चलना हमारा काम है।

जीवन अपूर्ण लिए हुए
पाता कभी खोता कभी
आशा निराशा से घिरा,
हँसता कभी रोता कभी
गति-मति न हो अवरूद्ध, इसका ध्यान आठो याम है,
चलना हमारा काम है।

इस विशद विश्व-प्रहार में
किसको नहीं बहना पड़ा
सुख-दुख हमारी ही तरह,
किसको नहीं सहना पड़ा
फिर व्यर्थ क्यों कहता फिरूँ, मुझ पर विधाता वाम है,
चलना हमारा काम है।

कालजयी

मैं पूर्णता की खोज में
दर-दर भटकता ही रहा
प्रत्येक पग पर कुछ न कुछ
रोड़ा अटकता ही रहा
निराशा क्यों मुझे? जीवन इसी का नाम है
चलना हमारा काम है।

साथ में चलते रहे
कुछ बीच ही से फिर गए
गति न जीवन की रूकी
जो गिर गए सो गिर गए
रहे हर दम, उसी की सफलता अभिराम है,
चलना हमारा काम है।

फकत यह जानता
जो मिट गया वह जी गया
मूँकर पलकें सहज
दो घूँट हँसकर पी गया
सुधा-मिश्रित गरल, वह साकिया का जाम है,
चलना हमारा काम है।

नदिया के दो तीर हैं, बिटिया का संसार।
आधा जीवन इस तरफ, आधा है उस पार।।
—राजगोपाल सिंह

वह आग न जलने देना

– रमानाथ अवस्थी

जो आग जला दे भारत की ऊँचाई,
वह आग न जलने देना मेरे भाई।

तू पूरब का हो या पश्चिम का वासी
तेरे दिल में हो काबा या हो काशी
तू संसारी हो चाहे हो संन्यासी
तू चाहे कुछ भी हो पर भूल नहीं
तू सब कुछ पीछे, पहले भारतवासी।

उन सबकी नज़रें आज हमीं पर ठहरीं
जिनके बलिदानों से आज़ादी आई।

जो आग जला दे भारत की ऊँचाई,
वह आग न जलने देना मेरे भाई।

तू महलों में हो या हो मैदानों में
तू आसमान में हो या तहखानों में
पर तेरा भी हिस्सा है बलिदानों में
यदि तुझमें धड़कन नहीं देश के दुख की
तो तेरी गिनती होगी हैवानों में।

मत भूल कि तेरे ज्ञान सूर्य ने ही तो
दुनिया के अँधियारे को राह दिखाई।

जो आग जला दे भारत की ऊँचाई,
वह आग न जलने देना मेरे भाई।

तेरे पुरखों की जादू भरी कहानी
गौतम से लेकर गांधी तक की वाणी

कालजयी

गंगा जमना का निर्मल-निर्मल पानी
इन सब पर कोई आँच न आने पाए
सुन ले खेतों के राजा, घर की रानी।

भारत का भाल दिनोंदिन जग में चमके
अर्पित है मेरी श्रद्धा और सचाई।

जो आग जला दे भारत की ऊँचाई,
वह आग न जलने देना मेरे भाई।

आज़ादी डरी-डरी है आँखें खोलो
आत्मा के बल को फिर से आज टटोलो
दुश्मन को मारो, उससे मत कुछ बोलो
स्वाधीन देश के जीवन में अब फिर से
अपराजित शोणित की रंगत को घोलो।

युग-युग के साथी और देश के प्रहरी
नगराज हिमालय ने आवाज़ लगाई।
जो आग जला दे भारत की ऊँचाई,
वह आग न जलने देना मेरे भाई।

मैं तुझमें ऐसी रमी, ज्यों चंदन में नीर
तेरे-मेरे बीच में, ख़ुशबू की जंजीर
—डॉ. रमा सिंह

सड़क पर एक आदमी

– डॉ. अशोक वाजपेयी

वह जा रहा है
सड़क पर
एक आदमी
अपनी जेब से निकालकर बीड़ी सुलगाता हुआ
धूप में–
इतिहास के अंधेरे
चिड़ियों के शोर
पेड़ों में बिखरे हरेपन से बेखबर
वह आदमी

बिजली के तारों पर बैठे पक्षी
उसे देखते हैं या नहीं–कहना मुश्किल है
हालाँकि हवा उसकी बीड़ी के धुएँ को
उड़ाकर ले जा रही है जहाँ भी वह ले जा सकती है

वह आदमी
सड़क पर जा रहा है
अपनी ज़िंदगी का दुख-सुख लिए
और ऐसे जैसे कि उसके ऐसे जाने पर
किसी को फ़र्क नहीं पड़ता
और कोई नहीं देखता उसे
न देवता, न आकाश और न ही
संसार की चिंता करने वाले लोग

वह आदमी जा रहा है
जैसे शब्दकोष से
एक शब्द जा रहा है
लोप की ओर

और यह कविता न ही उसका जाना रोक सकती है
और न ही उसका इस तरह नामहीन
ओझल होना

कल जब शब्द नहीं होगा
और न ही यह आदमी
तब थोड़ी-सी जगह होगी
खाली-सी
पर अनदेखी
और एक और आदमी
उसे रौंदता हुआ चला जाएगा।

मधुमय बंधन बाँधकर, कल लौटी बारात।
हरी काँच की चूड़ियाँ, खनकीं सारी रात।।
—अशोक 'अंजुम'

ओ बासंती पवन

– डॉ. कुंवर बेचैन

बहुत दिनों के बाद
खिड़कियाँ खोली हैं
ओ बासंती पवन, हमारे घर आना!

जड़े हुए थे ताले सारे कमरों में
धूल भरे थे आले सारे कमरों में
उलझन और तनावों के रेशों वाले
पुरे हुए थे जाले सारे कमरों में

बहुत दिनों के बाद
साँकलें डोली हैं
ओ बासंती पवन, हमारे घर आना!

एक थकन-सी थी नव भाव-तरंगों में
मौन उदासी थी वाचाल उमंगों में
लेकिन आज समर्पण की भाषा वाले
मोहक-मोहक, प्यारे-प्यारे रंगों में

बहुत दिनों के बाद
खुशबुएँ घोली हैं
ओ बासंती पवन, हमारे घर आना!

पतझर ही पतझर था, मन के मधुवन में
गहरा सन्नाटा-सा था अंतर्मन में
लेकिन अब गीतों की स्वच्छ मुंडेरी पर
चिंतन की छत पर, भावों के आँगन में

बहुत दिनों के बाद
चिरइयाँ बोली हैं
ओ बासंती पवन, हमारे घर आना!

मैं समर्पित बीज-सा

– डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र

मैं वहीं हूँ, जिस जगह पहले कभी था
लोग कोसों दूर आगे बढ़ गए हैं।

जिंदगी यह एक लड़की साँवली-सी
पाँव में जिसने दिया है बाँध पत्थर
दौड़ पाया मैं कहाँ उनकी तरह ही
राजधानी से जुड़ी पगडंडियों पर

मैं समर्पित बीज-सा धरती गड़ा हूँ
लोग संसद के कंगूरे चढ़ गए हैं।

तंबुओं में बँट रहे रंगीन परचम
सत्य गूँगा हो गया है इस सदी में
धान पंकिल खेत जिनको रोपना था
बढ़ गए वे हाथ धो बहती नदी में

मै खुला डोंगर सुलभ सबके लिए हूँ
लोग अपनी व्यस्तता में मढ़ गए हैं।

खो गई नदियाँ सभी अंधे कुएँ में
सिर्फ नंगे पेड़ हैं लू के झँबाए
ढिबरियों से टूटनेवाला अंधेरा
गाँव भर की रोशनी पी, मुस्कुराए

शालवान को पाट, जंगल बेहया के
आदतन मुझ पर तबर्रा पढ़ गए है।

देखता हूँ इस शहर को

– भारतेंदु मिश्र

रोज़ जीते, रोज मरते
उम्र यों ही कट रही है
सीढ़ियाँ चढ़ते-उतरते!

फिर कपोतों की उमीदें
आँधियों में फँस गई है
बया की साँसें कहीं पर
फुनगियों में कस गई है

यहाँ तोते बाज से मिल
पंछियों के पर कतरते!

कँपकँपाते होठ नाहक
थरथराती देह है
और कुर्ते पर चढ़ा बस
इस्तरी-सा नेह है

पूछिए मत हाल बस
हर हाल में सजते-सँवरते!

लूटकर लाए पतंगें
लग्गियों से जो यहाँ
कैद उनकी मुट्ठियों में
आजकल दोनों जहाँ

कुछ धुआँते पेड़
उन पगडंडियों की याद करते!

आखिर कब तक?

– विजयशंकर चतुर्वेदी

गाँठ से छूट रहा है समय
हम भी छूट रहे हैं सफर में।

छूटी मेले जाती बैलगाड़ी
दौड़ते-दौड़ते चप्पल भी छूट गई
गिट्टियों भरी सड़क पर
हल में जुते बैल छूट गए
छूट गया एक-एक पुष्ट दाना।

देस छूट गया
रास्ते में छूट गए दोस्त
पेड़ तो छूटे अनगिनत
मूँछों वाले योद्धा भी छूट गए
जिसे लेकर चले थे
वह वज्र छूट गया।

छूट गया ईमान
पंख छूट गए देह से
हड्डियों से खाल छूट गई
आखिर कब तक नहीं छूटेगी सहनशक्ति?

बच्चों को भी घूस का, चढ़ने लगा बुखार।
चॉकलेट दो जब इन्हें, तब देंगे यह प्यार।।
–डॉ. उर्मिलेश

जहीर कुरैशी की दो ग़ज़लें

एक

सबकी आँखों में नीर छोड़ गए।
जाने वाले शरीर छोड़ गए।

राह भी याद नहीं रख पाई
क्या... कहाँ राहगीर छोड़ गए?

लग रहे हैं सही निशाने पर,
वो जो व्यंगों के तीर छोड़ गए।

एक रुपया दिया था दाता ने,
सौ दुआएँ फकीर छोड़ गए।

उस पे कब्ज़ा है काले नागों का,
दान जो दान-वीर छोड़ गए।

हम विरासत न रख सके कायम,
जो विरासत 'कबीर' छोड़ गए।

दो

क्या पता था कि किस्सा बदल जाएगा,
घर के लोगों से रिश्ता बदल जाएगा।

हाथ से मुँह के अंदर पहुँचने के बाद,
एक पल में बताशा बदल जाएगा।

दो दशक बाद अपने ही घर लौट कर,
कुछ न कुछ घर का नक्शा बदल जाएगा।

वो बदलता है अपना नज़रिया अगर,
सोचने का तरीका बदल जाएगा।

चश्मदीदों की निर्भय गवाही के बाद।
खुद-ब-खुद ये मुकदमा बदल जाएगा।

लौट आया जो पिंजरे में थक-हार कर,
अब वो बागी परिंदा बदल जाएगा।

घर के अंदर दिया बालते साथ ही,
घुप अंधेरे का चेहरा बदल जाएगा।

आँखों में काजल सजा, देख लजाई रात।
माथे पर बिंदिया खिली, जग में हुआ प्रभात।।
—उदयभानु 'हंस'

उपहार

– तपन राय

छुट्टी-छुट्टी-छुट्टी
बन्धुवर जा रहे हैं पहाड़ों की सैर पर,
जाते-जाते प्रश्न कर गए,
तुम्हारे लिए क्या उपहार लाऊं,
कठिन है कितना यह प्रश्न
उत्तर ढूंढ़ने में मैं हुआ मग्न,
लाना बन्धु हृदय भरी हंसी,
उस देश के लोगों का प्रेम इतिहास,
सभी के मन का विश्वास,
लाना साथ में सभी का भरोसा,
जैसे प्रकृति के शून्य स्थान में नई पूर्ण उमंग,
मिटाकर आना सभी के मन का द्वेष,
फिर न रहे किसी के अभिमान की बात,
लाना नन्दिनी के शांति संदेशों को
जैसे अवास्तव में वास्तव, अनेक तर्क-वितर्क,
जैसे जगत की सीमाओं से परे, स्वतंत्र गीत की तरह,
लौटा लाना मेरे बचपन के स्वप्न गाथा भरे दिन,
और लाना बादलों से ढका, ढलता चांद,
आकाश की कोमल मंद हंसी और
टिमटिमाते तारे,
हरियाली पहाड़ों की चोटी, झूमते आकाश,
बादलों के छुपने-छुपाने का खेल,
और झरना छंद-सुरों का,
पांवों के नीचे दबे मचमचाते सूखे
पत्तों का ताल,
और लाना 'काश' फूल के नशे में उन्मत्त,
साथ में नदी के बहते अविराम स्रोत,
जैसे स्वयं के लिए रास्ता तलाशने की चेष्टा,
और इस सूर्य किरण की तरह,
'वालाकार' के आकाश को छूने का खेल,
पलाश के रंगों में सजा एक संसार,
जो होगा हमारा, तुम्हारा और सबका।

नरेश शांडिल्य के दोहे

छोटा हूँ तो क्या हुआ, जैसे आँसू एक।
सागर जैसा स्वाद है, तू चखकर तो देख।।

देख तेरे शहर को, भीड़ भीड़ ही भीड़।
तिनके ही तिनके मिले, मिला न कोई नीड़।।

कतरा-कतरा घुल रही, घर-घर बूढ़ी आँख।
बेटे-बहुओं को लगे, सुरखाबों के पांख।।

सब कुछ पलड़े पर चढ़ा, क्या नाता क्या प्यार।
घर का आँगन भी लगे, अब तो इक बाजार।।

मैंने देखा देश का, बड़ा सियासतदान।
न चेहरे पर आँख थी, चेहरे पर कान।।

जागा लाखों करवटें, भीगा अश्क हज़ार।
तब जाकर मैने किए, कागज़ काले चार।।

मैं खुश हूँ औजार बन, तू ही बन हथियार।
वक्त करेगा फैसला, कौन हुआ बेकार।।

सब-सा दिखना छोड़कर, खुद-सा दिखना सीख।
संभव है सब हों गलत, बस तू ही हो ठीक।।

तू पत्थर की ऐंठ है, मैं पानी की लोच।
तेरी अपनी सोच है, मेरी अपनी सोच।।

लौ से लौ को जोड़कर, लौ को बना मशाल।
क्या होता है देख फिर, अंधियारों का हाल।।

आसमान के जोश में, रख धरती का होश।
कटकर अपने मूल से, बढ़ा न कोई कोश।।

जिसके उर में आग है, उसके सुर में राग।
सूरज सदा जगाएगा, जाग भले न जाग।।

तो बड़ा नुकसान होगा

ठहरो,
घर जलाती आग पर पानी फेंकने वालों, ठहरो
आग बुझ गयी
तो बड़ा नुकसान होगा।

आज आग की इस रोशनी में
कुछ ऐसे चेहरों का 'पर्दाफाश' होगा
जो कहने को हमारा खास होगा
पर असल में जेबतराश होगा।

आग बुझ गयी
तो बड़ा नुकसान होगा।

आज उनकी भी यहां पहचान होगी
जो गैरों की जलती आग पर
सेकते हैं रोटियां।

आग बुझ गयी
तो बड़ा नुकसान होगा।

और देखो,
नज़र उन पर भी रखना तुम जो जले घर में
ढूढ़ते होंगे
भुने आलू।

अच्छा है पहाड़ तुम

– शिव कुमार 'बिलग्रामी'

अच्छा है पहाड़ तुम
चल नहीं पाते
चलते तो शहरों में
कुचल ही जाते।

अच्छा है पहाड़ तुम
नग्न नहीं होते
नग्न हो जाते
तो 'सभ्य' कहाते।

अच्छा है पहाड़ तुम
विकास नहीं करते
विकास करते
तो बेमौत मरते।

अच्छा है पहाड़ तुम
कुछ नहीं कहते
कुछ अगर कहते
तो पहाड़ नहीं रहते।

रे माटी के कूल्हड़े, देउँ तोय चटकाय।
जो पिय के हित हैं बने, उनसे चिपकत जाय।।
—अज्ञात

पूजा-अर्चना

– डा. शैलजा सक्सेना

खाली हाथ लौट मैं आयी
द्वार तुम्हारे पहुँच खड़ी थी,
नमन मगर मैं न कर पायी
मन-घट लेकर पन-घट पर मैं
स्नेह-उर्मि जगा न पायी...।।

हाथ जोड़, नतमस्तक होकर
मौन-भाव जगाने चाहे,
माँगों की चूनर अर्पित कर
इच्छाओं की झड़ी लगा दी
अंधियारे गलियारे में
तुम्हें किन्तु मैं देख न पायी...।।

यहाँ कपट की हवा चल रही
यहाँ अहं की हैं प्राचीरें
यहाँ स्वयं से झूठ बोलते
भीतर ही हैं दो जन बसते
बाहर के सच की क्या पूछो
अपने से आँख न मिला पाई...।।

बहुत सरल है भाषण देना
सबके सम्मुख 'निज' ढक लेना
अक्सर अभिनय करते-करते
अभिनय को ही सच कह देना
मगर उम्र की राह, सत्य से
होगी भेंट भुला ना पाई...।।

माया की सारी जंज़ीरें
अपने आप उठा कर पहनी
औ' हृदय के क्षीण गान को
जान-बूझ अनसुना कर दिया
मरुधर की इस भाग-दौड़ में
भावों का अकाल पड़ गया
बाँध टकटकी अम्बर देखा
स्वाती बूँद चखने न पायी...।।

दस चुनिंदा शेर

1. कांटो का भी हक़ है कुछ आखिर
कौन छुड़ाये अपना दामन।
– जिगर मुरादाबादी

2. ये बड़ा ऐब मुझमें है अकबर
दिल में जो आये कह गुजरता हूं।
– अकबर इलाहाबादी

3. मैंने तुझ से चांद सितारे कब मांगे
रौशन दिल बेदार नज़र दे या अल्लाह।
– कतील शिफाई

4. जो कोई आए है नज़दीक ही बैठे है तिरे
हम कहां तक तिरे पहलू से सरकते जाएं।
– आतिश

5. ज़ाहिद शराब पीने दे मस्जिद में बैठकर
या वो जगह बता दे, जहां पर खुदा न हो।
– दाग़

6. लिपट जाते हैं वो बिजली के डर से
इलाही ये घटा दो दिन तो बरसे।
– अज्ञात

7. मानी हैं मैंने सैकड़ों बातें तमाम उम्र
आज आप एक बात मिरी मान जाइये।
– अमीर मीनाई

8. दोस्त या अज़ीज़ है खुदफ़रेबियों के नाम
आज आप के सिवा आप का कोई नहीं।
– 'ताजवर' नजीबाबादी

9. मेरी किस्मत में ग़म गर इतना था
दिल भी या रब कई दिये होते।
– ग़ालिब

10. अब ये भी नहीं ठीक कि हर दर्द मिटा दें
कुछ दर्द कलेजे से लगाने के लिए हैं।
– जांनिसार 'अख्तर'

चोंच में आकाश

– पूर्णिमा वर्मन (शारजाह)

एक पाखी
चोंच में आकाश लेकर
उड़ रहा है

एक राजा प्रेम का
इक रूपरानी
झूलती सावन की
पेंगों-सी कहानी
और रिमझिम
खोल सिमसिम

मन कहीं सपनों सरीखा
जुड़ रहा है

एक पाखी
पंख में उल्लास लेकर
उड़ रहा है

जो व्यथा को
पार कर पाया नहीं
वह कथा में सार
भर पाया नहीं
छोड़ हलचल
बस उड़ा चल

क्यों उदासी की डगर में
मुड़ रहा है

एक पाखी
साँस में विश्वास लेकर
उड़ रहा है।

अपने दिल के हर आँसू को...

– **अभिनव शुक्ला** (अमेरिका)

अपने दिल के हर आँसू को फूल बनाना सीखा है
और दर्द के हर कतरे को शूल बनाना सीखा है।

हूँ कत्ल हुआ कई बार यहाँ इन सन्नाटी-सी गलियों में
है खून बहाया भी काफी इस दुनिया की रंगरलियों में
आँखों के काजल से मैंने तीरों को चलते देखा है
सावन के आँचल के टुकड़े को आग उगलते देखा है

गिर कर घायल हो धरती की छाती पर पाँव पसारे हैं
और कभी खड़े हो एक टाँग पर हफ्ते यहाँ गुजारे हैं
तुम हाथ में पत्थर को लेकर अब किसे डराने आए हो
मैंने हर लोहे के टुकड़े को धूल बनाना सीखा है।

तुम जिस आँसू की बाँह पकड़कर इतनी दूर चले आए
जिसकी ताकत पर आज तलक सारे दस्तूर चले आए
वह तेरी हिम्मत के कारण तेरा साथी बन बैठा है
उसके आगे आँखे तेरी उसके पीछे मन बैठा है

रोने वाले का साथ मगर वह भी तो न दे पाता है
नज़रों के रस्ते देखो सबसे पहले छोड़ के जाता है
चाहे जितनी गहरी हों जितनी मज़बूती से जकड़े हों
हर बड़े वृक्ष के कण-कण को निर्मूल बनाना सीखा है।

सिसक-सिसक गेहूँ कहें, फफक-फफक कर धान।
खेतों में फसलें नहीं, उगने लगे मकान।।
–डॉ. कुँअर बेचैन

पल पल जीवन बीता जाए

– **लावण्या शाह** (अमेरिका)

पल पल जीवन बीता जाए
निर्मित मन के रे उपवन में
कोई कोयल गाए रे!

सुख के दुख के पंख लगाए
कोई कोयल गाए रे!
कहीं खिली है मधुर कामिनी
कहीं अधखिली चमेली भान बुलाए
कहीं दूब है हरी हरी कहीं भंवरा मंडराए रे!

भोग रहा मन कुछ क्षण मधुरम
विश्व प्रिये है कितना निर्मम
कुछ क्षण अपने सपने अपने
भोग रहा मन सुख के वन में
भयी कोयलिया मन की बंदी
तन के तन के निर्बल पिंजरे में
निर्मित मन के रे उपवन में कोई कोयल गाए रे!

जगह ज़रा ना पा सके, शोषण, भूख गुहार।
नेताजी की छींक को, छाप रहे अखबार।।
–जय कुमार 'रुसवा'

चार मुक्तक

– **अनूप भार्गव** (अमेरिका)

एक

प्रणय की प्रेरणा तुम हो
विरह की वेदना तुम हो
निगाहों में तुम्हीं तुम हो
समय की चेतना तुम हो।

दो

तृप्ति का अहसास तुम हो
बिन बुझी सी प्यास तुम हो
मौत का कारण बनोगी
ज़िन्दगी की आस तुम हो।

तीन

सुख-दुःख की हर आशा तुम हो
चुंबन की अभिलाषा तुम हो
मौत के आगे जाने क्या हो
जीवन की परिभाषा तुम हो।

चार

सपनों का अध्याय तुम्हीं हो
फूलों का पर्याय तुम्हीं हो
एक पंक्ति में अगर कहूं तो
जीवन का अभिप्राय तुम्हीं हो।

प्रेम-गीत जिसमें लिखे, जिसमें रखे गुलाब।
अलमारी में बन्द है, अब वह खुली किताब।।
–प्रदीप दुबे 'दीप'

गीत ढूँढ़े

– सुरेन्द्र नाथ तिवारी (अमेरिका)

गीत ढूँढ़े इस अधर को
जो उन्हें सरगम बना दें।

ज़िन्दगी की बीन के निश्चेत तारों को जगाये,
ज्यों पलक मधुयामिनी में रजनी-गंधा मुस्कराये।
ज्यों समन्दर की लहर को गुदगुदाती चाँदनी है,
वह अधर-स्पर्श, मेरे प्राण यूँ ही गुदगुदाये।
चेतना के अंकुरण ये ढूँढ़ते स्नेहिल घटा वह–
प्रीत से जो पाट इनको स्नेह के शतवल बना दे,

स्नेह से जो सींच इनको
प्रीत के पाटल बना दे।
गीत ढूँढ़े उस अधर को
जो उन्हें सरगम बना दें।

व्रजवंशी पत्थरों में भी छिपी हैं अहिल्यायें,
गर नज़र हो राम की तो, ढूँढ़ लेती गौतमी को।
स्नेह-करुणा से भरा जब हृदय होता आदमी का,
आदमी भी ढूँढ़ लेता पत्थरों में आदमी को।
ठोकरें झेलीं बहुत हैं ज़िन्दगी ने राम मेरे–
चाहता पाहन परस वह,
जो उसे पारस बना दे।
गीत ढूँढ़े उस अधर को
जो उन्हें सरगम बना दें।

मलय-तरुवी से लिपट ज्यों पवन है होता सुवासित,
उस अधर से लिपट मेरे गीत भी लयमय बनेंगे।
ज़िन्दगी के कंटकों से बिंध जो मृण्मय बन गये थे,
उस गुलाबी स्पर्श से वे आज फिर चिन्मय बनेंगे।
यूं तो हैं कितने झकोरे ज़िन्दगी की वाटिका में–
चाहतीं साँसें पवन वह
जो उन्हें परिमल बना दे।
गीत ढूँढ़े उस अधर को
जो उन्हें सरगम बना दें।

नई कविताएं

– अंतरा करवड़े

1.

उन सपनों को जिन्दा करें
कहनी हैं तुमसे ये बातें
छत पर
बहती हुई
पहरे में
बूंद... बूंद...
मन के बांध
रस्में।

2.

आदम और हव्वा
काश
चिड़िया के जग में
जाने क्यों
बिखरे पत्ते
दूर देश की मिट्टी
मां ये तुम्हारी लाड़ली बेटी
मीठी लोरी।

मंदिर-मस्जिद से जुड़ी है, जब से पहचान।
मजहब ऊँचे हो गए, छोटा हिन्दुस्तान।।
—माहेश्वर तिवारी

3.

उन सपनों को जिंदा करें

उन सपनों को ज़िंदा करें
कि खुश है जिसे देखकर ही दुनिया
जीना कभी चाहा ही नहीं

खिलती धूप में मुसकाती लड़की
क़ैद है, ख़बरों में, घरों में
उसे बाहर लाना चाहा ही नहीं

उन सपनों को ज़िंदा करें।

फूल भी है दुनिया खुशियों की
कटते, सजते, हमारे लिए जो
उनकी बातें सुनना चाहा ही नहीं

उन सपनों को ज़िंदा करें।

गरम दिमाग से जो तोड़ा रिश्ता,
खुद को साबित भर करते रहे
उसे समझना चाहा ही नहीं

उन सपनों को ज़िंदा करें।

ऊंचे सपने, जीवन के लिए
सजाते रहे, पूरे किए
ज़िंदगी जीवन चाहा ही नहीं
उन सपनों को ज़िंदा करें
कि खुश है जिसे देखकर ही दुनिया
जीना कभी चाहा ही नहीं।

पार्श्व में गंभीर चिंतन है

– शिव कुमार बिलग्रामी

साहित्य जगत में आजकल हास्य और व्यंग्य का दौर चल रहा है। हास्य-व्यंग्य साहित्य ही सबसे अधिक पढ़ा-लिखा और सुना जा रहा है। यदि प्रकारान्तर से कहें तो हम कह सकते हैं कि हास्य-व्यंग्य की एक 'मार्केट वैल्यू'। और उसी के चलते यह खूब फल-फूल रहा है। वैसे तो गीत-प्रगीत, गजल-शेर आदि की मांग भी श्रोताओं के बीच है लेकिन 'हास्य-व्यंग्य' आधारित मंच पर 'जमाऊ' गद्य-पद्य की मांग सर्वाधिक है। कदाचित इसलिए हमारे 'सरस्वती पुत्रों' ने बोझिल, जटिल और गूढ़ साहित्य रचना की ओर से मुंह मोड़ लिया है और अब वे अपने चारों ओर व्याप्त बुराइयों और कुरीतियों पर 'व्यंग्य' के माध्यम से प्रहार करने लगे हैं।

कृति	: ऐसा भी होता है
कवि	: महेन्द्र शर्मा (कविता संग्रह)
प्रकाशक	: मंजुली प्रकाशन
मूल्य	: 150 रुपये **पृष्ठ** : 104

जाने-माने हास्य कवि महेन्द्र शर्मा का हास्य-व्यंग्य कविता संग्रह 'ऐसा भी होता है' इसी तरह की सोद्देश्य हास्य-व्यंग्य कविताओं का संकलन है। इसमें कवि ने अपने सामाजिक सरोकारों और दायित्वों को ध्यान में रखते हुए कुछेक ऐसी कविताओं का सृजन किया है जो पढ़ने-सुनने में तो अत्यन्त सरल-सुबोध है लेकिन उनके पार्श्व में बड़ा गंभीर चिंतन है–*यह जालिम शराब भी/नेताओं की तरह/दोहरी नीति अपनाती है/अमीरों को नशा देती है/गरीबों को निगल जाती है।*

आज के दौर में राजनीति जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में हावी है। ऐसे में कोई भी कवि/कथाकार अपने आस-पास की राजनीतिक विद्रूपताओं से अछूता नहीं रह सकता। महेन्द्र शर्मा जी भी इसका अपवाद नहीं हैं। वह अपने आस पास की राजनीतिक घटनाओं से पूरी तरह सजग हैं। उनकी यही राजनीतिक सजगता उनकी हास्य चेतना को प्रबल और धारदार बनाती है। इस संदर्भ में कविता 'पुलिस आत्मा' का यह अंश उल्लेखनीय है–*इस देश में कोई न कोई/किसी न किसी से तो/छेड़खानी कर ही रहा है/भंवरा कली से/बादल बिजली से/मौसम फिजाओं से/हुस्न अदाओं से/दूरदर्शन समाचार से/पुजारी मंत्र से/नेता लोकतंत्र से।* या फिर उनकी कविता 'किसको फुर्सत है' का अंश देखिये–*समस्याएं खाक सुलझायेंगे/समस्याएँ उठाने तक के लिए/पैसा खाते है।*

वर्तमान में हम उसी कवि को सफल और कामयाब कवि मानते हैं जो मंच पर 'जमता' हो और मंच पर जमने का पैमाना है किसने किसनी तालियां बटोरीं। इसीलिए मौजूदा दौर का प्रत्येक कवि कुछ-न-कुछ महाताली बटोरू रचनाएं गढ़ता है और श्रोताओं के बीच वाहवाही लूटता है। महेन्द्र शर्मा जी ने मंच पर एटमबमनुमा कुछेक कैप्सूल रचनाएं लिखी हैं। इन्हीं में से एक है–*गैस सी बनने लगती है मुलाकात के बाद/हाई होता है बीपी तेरी हर बात के बाद/तेरी गलियों में न रखेंगे कदम भूल से/बहुत कीचड़ हो जाती है सनम बरसात के बाद।*

पर हल्के-फुल्के अंदाज में कविता करने का यह तात्पर्य बिल्कुल नहीं है कि कवि अपने गुरुतर सामाजिक दायित्व से ओझल हो रहा है। वह अपनी प्रतिनिधि कविता 'किसको फुर्सत है' में युवा

पीढ़ी के विपथन पर गहरा आक्रोश व्यक्त करता है–*इस दिल ने दिमाग खराब कर दिया है/युवा पीढ़ी में देश-प्रेम की जगह/देह-प्रेम भर दिया है।*

जहां एक ओर कवि देश में व्याप्त भ्रष्टाचार और सामाजिक कुरीतियों को अपने लेखन में उजागर करता है वहीं दूसरी ओर वह हमारे देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के स्थायित्व से पूरी तरह आश्वस्त है और उसे लगता है कि मौजूदा तमाम कुरीतियों के बावजूद हमारे देश का कोई बड़ा अहित नहीं कर सकता। उसकी यह सोच भारतीय संस्कृति का प्राण कही जाने वाली उदारता से उद्‌भूत लगती है। इसीलिए वह अपनी कविता 'यमराज डॉटकाम' में कहता है–*फिर भी जहां होता हो/यमराज तक का सम्मान/उस देश का/क्या बिगाड़ लेगा कोई शैतान।*

शायद यहां ऐसा ही होता है।

खेतों में फैली रही, मीलों तलक कपास।
मगर किसानों के नहीं, तन पर एक लिबास।।
–डॉ. सुनील जोगी

निवेदन

■ **आप मेरे ई मेल-आई डी** kavi**sunil**jogi@gmail.com **पर विज्ञापन या रचनाएं भेजकर पत्रिका की निरंतरता में अपना योगदान दे सकते हैं।**

■ **समीक्षा के लिए अपनी सद्यःप्रकाशित पुस्तक की दो प्रतियां हमें भेज सकते हैं।**

■ **यदि 'पारस-पखान' आपको पसंद है, तो उसके नियमित सदस्य बनिए। स्वयं पढ़कर और दूसरों को भी इसका सदस्य बनाकर आप हमारे अभियान में सहभागी बन सकते हैं। कम-से-कम तीन से पांच वर्ष हेतु सदस्य बनने के लिए संपादकीय कार्यालय में अपनी धनराशि प्रेषित करें।**

डायमंड बुक्स में प्रकाशित
सुप्रसिद्ध कवि डॉ. सुनील जोगी की रचनाएँ

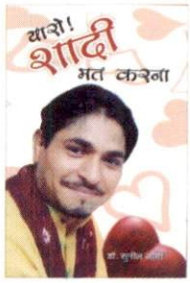

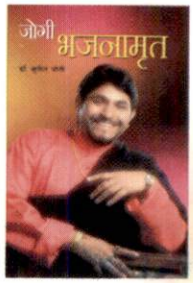

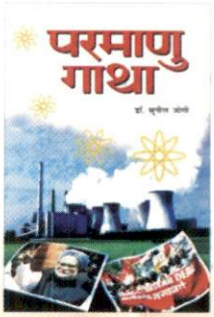

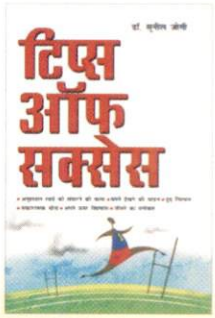

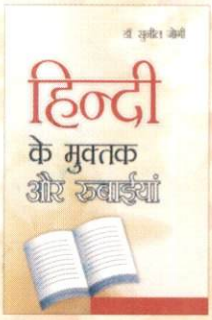

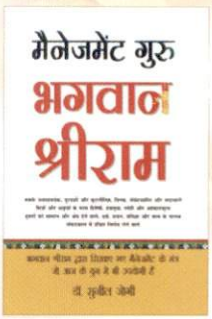

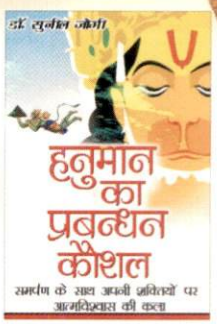

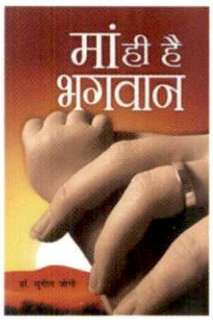

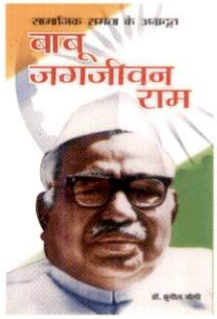

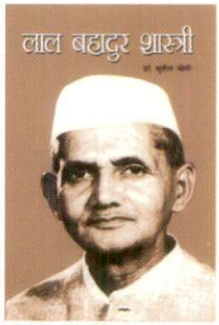

डायमंड बुक्स X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II नई दिल्ली-110020 फोन : 011-41611861, 40712100 फैक्स : 41611866 ई-मेल : sales@dpb.in
सभी बुक स्टॉलों पर उपलब्ध Shop online at www.dpb.in

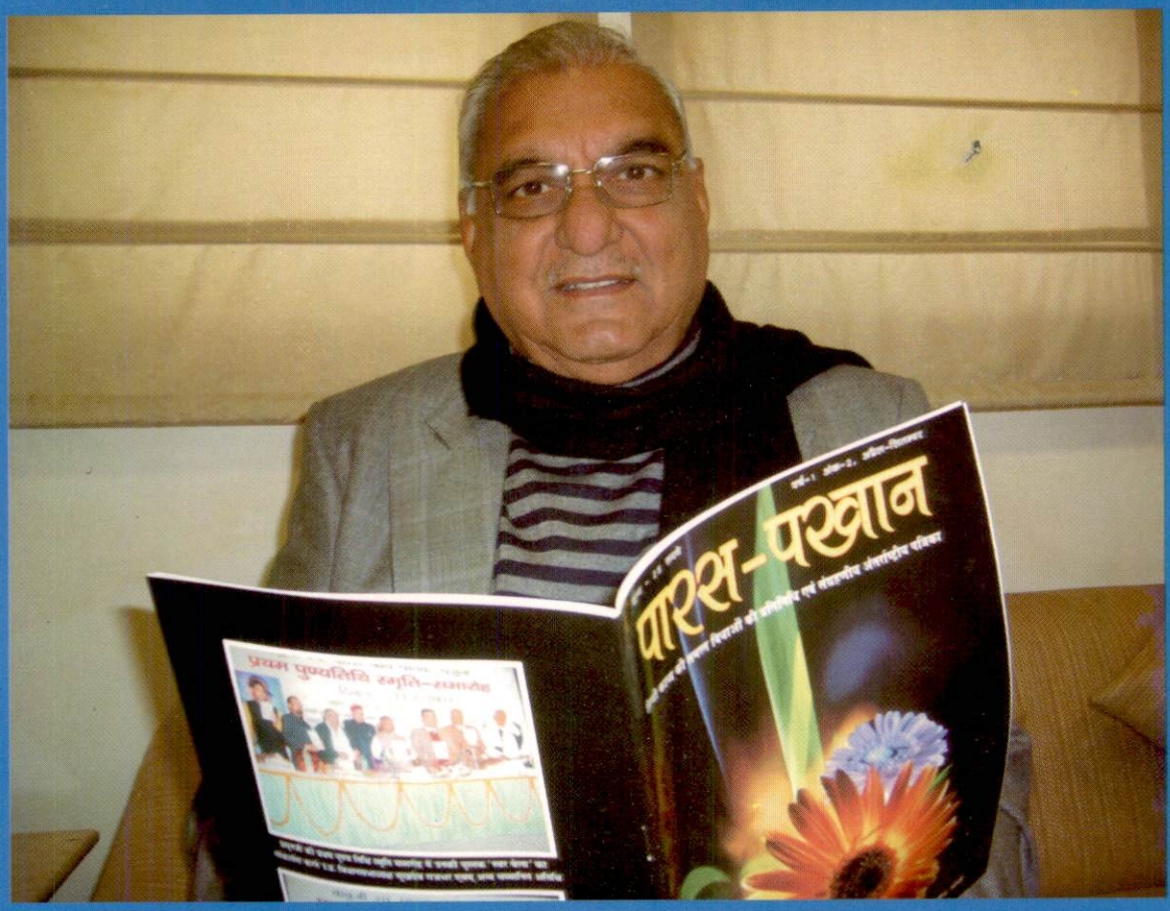

पारस पखान पढ़ते हुए हरियाणा के मुख्यमंत्री श्री भूपेन्द्र सिंह हुड्डा

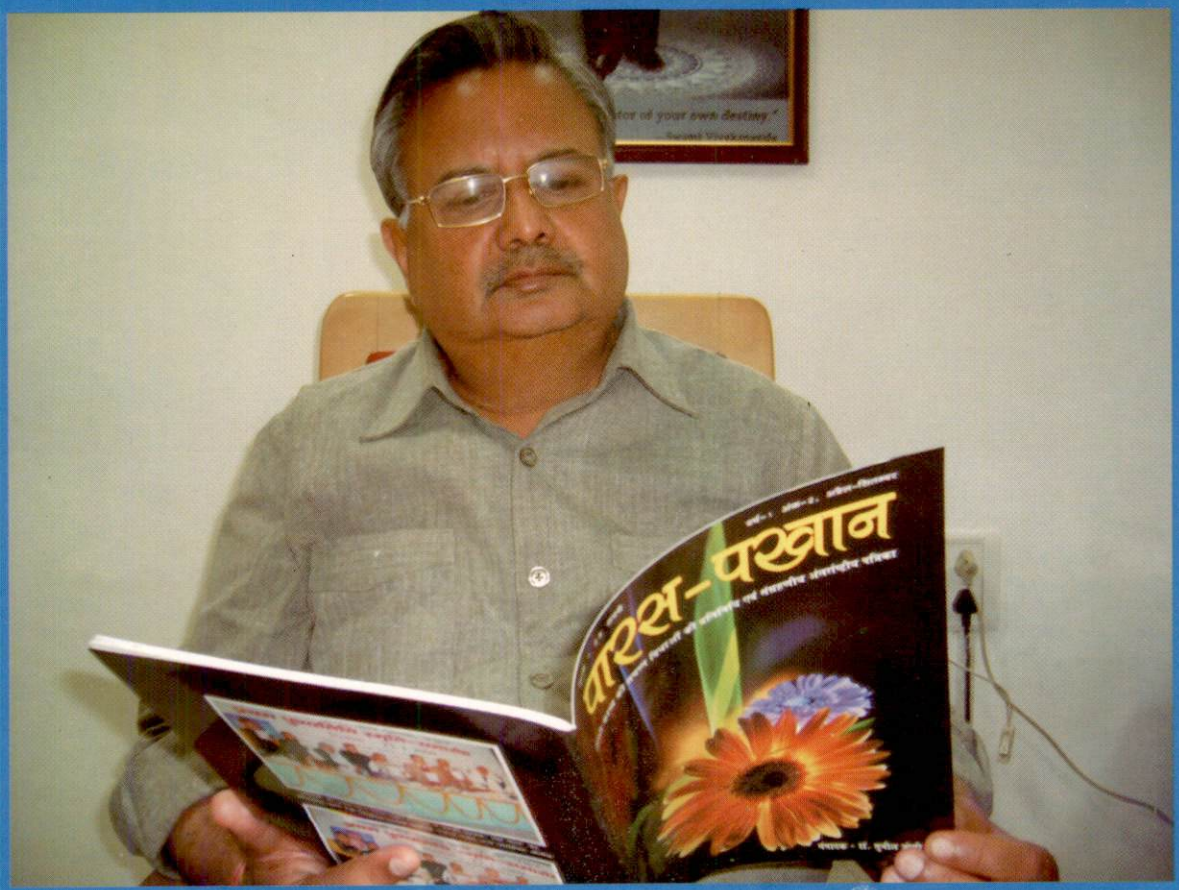

पारस पखान पढ़ते हुए छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री श्री रमन सिंह